हठ-योग

(सरल गुजराती भाषा एवं हिन्दी अनुवाद सहित)

गुप्तावतार बाबाश्री

'चण्डी' वर्ष ४६, विशिष्ट अङ्क—८

हठ-योग

रचयिता

गुप्तावतार बाबाश्री

अनुवादक

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल

सम्पादक एवं टिप्पणी-कर्त्ता

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

श्री ऋतशील शर्मा

अ - नु - क्र - म

निवेदन

(प्रथम संस्करण, वैशाख २००६—मई १९५२ का संक्षिप्त अंश)

'श्री भैरवोपदेश' पूज्य चरण श्रीमान् बाबा मोतीलाल जी महाराज की अध्यात्म-विषयक एक अनूठी रचना है। यह रचना गुजराती के सरस तथा ओज - पूर्ण पद्यों में है। इसमें कर्म, योग और ज्ञान आदि दार्शनिक तथ्यों का वर्णन हुआ है। यह वर्णन उपदेशात्मक होते हुए भी बहुत रोचक और हृदय-ग्राही है।

अभी तक यह रचना गुजराती में प्राप्त थी। अध्यात्म-विषय के प्रेमियों के सौभाग्य से अब यह हिन्दी-अक्षरों में हिन्दी अनुवाद-सहित प्रकाशित हो रही है।

मुझ जैसे साधारण पाठकों की अल्प बुद्धि में योग, ज्ञान आदि गम्भीर विषय उतना समझ में नहीं आ पाते। ऐसों के लिये 'श्री भैरवोपदेश' में इन सभी विषयों का विवेचन ऐसे ढँग से किया गया है कि साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी उन्हें भले प्रकार हृदयङ्गम कर सकता है।

अध्यात्म - विषय के प्रेमियों को इस रचना का संग्रह करा इससे अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयत्न करन चाहिये।

देवीदत्त शुक्ल
प्रयाग

वैशाख २००६, मई १९५२

विषय-प्रवेश

(गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों के आधार पर)

'योग' एक बड़ा विषय है। भगवान् श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण तत्त्व-विज्ञान का वर्णन योग में ही बताया है। योग का अर्थ है मिलना। हम लोग कहते हैं–इसका इसके साथ संयोग अच्छा है या बुरा है। दूध और शक्कर का योग सुयोग कहलाता है।

मन को अपने अस्तित्व अर्थात् सत्य वस्तु की शोध में लगाना या विश्व को जानने का प्रयत्न करना–इन सबका 'योग' में समावेश होता है। मन को एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर ले जाना अर्थात् सांसारिक लक्ष्य में एक बिन्दु पर लगे हुये मन को उच्च लक्ष्य धारण करने के लिए उस विन्दु से हटाकर अध्यात्म - मार्ग में ले जाने का नाम 'योग' है।

योगाचार्यों ने योग के भिन्न-भिन्न प्रकार बताये हैं। 'हठ-योग' के प्रथम उपदेश-कर्त्ता श्री गुरु मत्स्येन्द्रनाथ थे। अपने अस्थिर मन को जबर्दस्ती पकड़कर अनन्त में लगाने का नाम 'हठ-योग' है।

चञ्चल मन को पकड़ा कैसे जाय ? मन तो गति-मय है। यदि इसको एक तरफ से रोकें, तो वह दूसरी तरफ बह निकलता है। जब हम लोग मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करते हैं, तब बहुत से विचार आने लगते हैं। हम फिर मन को पकड़ते हैं परन्तु मन यहाँ-वहाँ भटकने लगता है।

भगवान् श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने कह तो दिया कि मन को हठ करके पकड़ो, पर यह करना कठिन है। यह हाथ में आने-वाली वस्तु नहीं है। इसको कैसे पकड़ें ?

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् श्री मत्स्येन्द्रनाथ बताते हैं कि–स्थूल शरीर के भीतर, जिसमें हाथ-पैर इत्यादि इन्द्रियाँ दिखती हैं, श्वास प्रति-क्षण आता है और फिर बाहर निकलता है। यह श्वास एक सूक्ष्म वस्तु है, जो दिखाई नहीं पड़ती।

इसी प्रकार शरीर में और देखने से पता चलता है कि उसमें विचार-ऊर्मियाँ पैदा होती हैं, जिसे हम मन कहते हैं। 'मन' अर्थात् मानना। मन मानता है, इसलिये हम उसे मन कहते हैं। उसमें तरह-तरह की तरंगें उठा करती हैं। इसमें हमें आराम मिलेगा, इस वस्तु से हमें सुख मिलेगा, इत्यादि अनेक प्रकार के विचार हमारे मन में आया करते हैं।

इस प्रकार हमें तोन वस्तुओं का बोध होता है––१ स्थूल शरीर, २ प्राण और ३ मन। इन सबके परे जीव है। जैसे शरीर और प्राण का सम्बन्ध है, वैसे ही प्राण और मन का भी सम्बन्ध है। यदि तुम 'प्राण' को रोक दोगे, तो मन भी रुक जायगा। मन यदि रोक दिया जायेगा, तो श्वास भी धीरे-धीरे एक समान चलने लगेगा।

गुरु श्री मत्स्येन्द्रनाथ से उनके शिष्यों ने पूछा कि यदि प्राण के बिना व्यक्ति नहीं जी सकता, तो फिर प्राण कैसे रोका जाय ?

इसके उत्तर में गुरुश्री ने बताया कि यदि मांस, मज्जा, शुक्र, मेद, रक्त, मूत्र, पुरीष अमुक मात्रा में कम कर दिये जायँ,

तो प्राण रोका जा सकता है। इसके लिए तीन क्रियायें हैं--
१ नेती, २ धौती और ३ कुन्जल। इनके अतिरिक्त आसन हैं, जिनके ४ प्रकार हैं। आसन करके 'उड्डयान बन्ध' लगाने पर, नीचे से दबाव देकर 'अपान' को ऊपर चढ़ाते हैं। हृदय बन्द न हो, इसलिए अपान को ऊपर करके फेफड़े की गति को जारी रखते हैं। इससे हृदय की गति बन्द नहीं होती और उसकी धड़कन चालू रहती है। अपान द्वारा रक्त का सञ्चालन हुआ करता है। इसलिये ऊपर के श्वास को बन्द करने से व्यक्ति मरता भी नहीं और मन रुक जाता है।

रुके हुए मन को इच्छित वस्तु में लगा देने से, मन उसी का रूप बन जाता है। यदि सच्चे भाव से लग जाय, तो निरोधित मन को अपने इष्ट ध्येय में लगाने से वह उसका रूप बन जायेगा। इस प्रकार तदाकार बनकर व्यक्ति 'ईश्वर' हो सकता है।

हठ-योग

हठयोग जे सुणो ते, षट भाव भावता मां.
षट अङ्ग ते वणा जो, अभ्यास जीव सामा । १

हठयोग के क्या अर्थ हैं, वह सुनो। हठयोग के छः अङ्ग हैं। जिस जीव को उसका अभ्यास करना हो, उसे इन छः अङ्गों को अपने सन्मुख रखना चाहिये।

आसन ने प्राण संयम, आहार प्रत्ययो मां,
ते ध्यान धारणा ने, प्रत्यक समाधि सीमा । २

वे छः अङ्ग निम्नलिखित हैं–

१ दृढ़ आसन, २ प्राणायाम, ३ युक्त-भोजन, ४ ध्यान, ५ धारणा, और ६ सविकल्प समाधि।

यम ने नियम मळी बे, अष्टाङ्ग योग जोगे,
मननी निवृत्ति थासे, जो जाग योग जोगे । ३

ऊपर कहे हुए छः अङ्गों के साथ यम और नियम मिलकर योग के कुल आठ अङ्ग हैं। इन आठों अङ्गों को सामने रखकर मन की निवृत्ति हो जाती है।

मुद्रात्रयी त्रिबन्धन, ने देहनी क्रिया त्रण,
आ त्रणना त्रिभेदो, योगे कहूं करो गण । ४

हठयोग करने में तीन मुद्राओं, तीन बन्धनों और

देह की तोन क्रियाओं—इन तीनों के तोन भेद करने पड़ते हैं, यह सुनो।

मुद्रामहा, महाबन्ध, ने खेचरी महावेध,
जालंधरो. डिड्याणी, ने मूलबंध मा वेद। ५

महा-बन्ध, महा-वेध, खेचरी ये तीन मुद्राएँ हैं और जालंधर-बन्ध, उड्डयान बन्ध तथा मूल बन्ध—ये तीनों बन्ध हैं।

सन्धान दीर्घ प्रणवी, सिद्धान्तनू श्रवण जे,
आ सर्व योग विद्या, सरसारना लवण जे। ६

प्राण को मन के साथ जोड़ना, ॐकार (प्रणव मन्त्र) को दीर्घ करके (फैलाकर) उच्चारण करना और तत्व-विज्ञान को सुनना—ये सब योग की विद्या कहलाती हैं। यह सर्व-साधन रूपी सरोवर के सार का नमक है।

दाबा चरण नी एडी, योनि परे अडावे,
जमणो चरण पसारी, कर जोरथी चढावे। ७

अब पहले 'महा-बन्ध' के अर्थ क्या है, वह सुनो—

बायें पैर की एड़ी को योनि और गुदा के बीच के जोड़ पर लगाकर, दाहिना पैर लिङ्ग के ऊपर के भाग पर चढ़ाना और दोनों हाथों की हथेलियों को

दोनों घुटनों के ऊपर के भाग पर उल्टा दिशा में जोर से दबाना। इससे शरीर का हिलना - डुलना बिलकुल बन्द हो जाता है।

दाढी हृदय लगाडी, पूरक पराण कुम्भक,
धीमे धरी सुधारी, दृढ धार छोड़ रेचक। ८

ठोढ़ी को हृदय (छाती) पर लगाना। शुरू में आठ मात्रा गिनकर श्वास को अन्दर लेना। ३२ मात्रा तक श्वास को अन्दर रोकना और फिर १६ मात्रा गिनते-गिनते श्वास को बाहर निकालना।

इस क्रिया को क्रमानुसार पूरक कुम्भक और रेचक कहते हैं। इसको 'प्राणायाम' कहते हैं।

दाबे करी फरीने, कर दक्ष पाद रोकी,
जे पाग छे पसार्यो, ते मांड मांडि रोकी। ९

बायाँ पैर लम्बा करके, दोनों हाथों से पैर के अँगूठे को पकड़ना और सिर को घुटने के पास अड़ाना।

महाबन्ध नाम आ छे, सद्योग आपनारू,
जे को करे जगत मां, ते मुक्ति पामनारू। १०

इसको 'महा-बन्ध' कहते हैं। इससे योग साधा जाता है। इसको जो कोई भा करेगा, वह मुक्ति पा जायेगा।

आ बन्धने जमावी, पूरक अनन्य धाजे,
करतो स्वकर्ण मुद्रा, गति प्राण आवरी जे। ११

'महा-वेध' के क्या अर्थ हैं; सुनो! कान में मुद्रा लगाकर पूरक करना–

पुट ने समा क्रम्याथी, वायु स्फुरे वधे छे,
महावेध नाम जेथी, दृढ धारणा बधे छे। १२

और दोनों पैर सीधे फैलाकर, पैरों को जोड़कर, वायु को बहुत समय तक रोके रहना।

इस क्रिया को 'महा-वेध' कहते हैं। इसके करने से 'धारणा-शक्ति' बढ़ती है।

जिह्वा वधारी झाली, ने कण्ठ मां मुके जो,
गल छिद्र नासिकाना, पर्दा बंधी रुके जो। १३

अब 'खेचरी मुद्रा' के अर्थ सुनिये! पहले जीभ के नीचे के जोड़ को बाँस की धार से धीरे-धीरे काटना। फिर जिह्वा का दोहन करके उसे लम्बी करना। तब नाक और गले का पर्दा बन्द हो जाये, ऐसी रीति से गले में जीभ को रखना।

मुद्रा ते खेचरी छे, भ्रूमध्य दृष्टि राखे,
योगी करे जरा ने, यम बीक ते न राखे। १४

इसको 'खेचरी मुद्रा' कहते हैं। इसे करके भृकुटि

के बीच में ध्यान करने से बुढ़ापे और यम (मृत्यु) का डर नहीं रहता है।

निज कण्ठ ने सिकोडी, हृदये लगाडतो जे,
जालन्धराख्य ते छे, दृढता वधारतो जे। १५

अपने गले के बाहर निकले हुए भाग को सिकोड़ कर, गले को हृदय पर लगाना। इस क्रिया को 'जालन्धर बन्ध' कहते हैं। इसे करने से दृढ़ता बढ़ती है।

एडी थकी दबावी, सङ्कोच योनि केरु,
जेथी अपान ऊठे, ते बन्ध योनि केरु। १६

एडी को लिङ्ग के ऊपर के भाग पर दबाकर, योनि को संकुचित करने से अपान वायु ऊपर चढ़ती है। इसे 'योनि-बन्ध' कहते हैं।

जे प्राण ने सुषुम्ना, प्रेरे दबाव नाखी,
उडे गति प्रवेगे, उडिड्यान बन्ध राखी। १७

फिर उसके ऊपर दबाव डालने से 'उड्डयान बन्ध' होता है और उससे प्राण तथा सुषुम्ना नाड़ी में वेग से गति के उठने की प्रेरणा होती है।

भेगा अपान प्राणो, ने नाद बिन्दु भेगा,
छे मूल-बन्ध जेथी, वे जीव ब्रह्म भेगा। १८

ऊपर से प्राण और नीचे से अपान के दबाव के बीच में नाद-बिन्दु का विस्फोट होने से, जीव आवरण रहित होकर मूल-तत्त्व चित्त के सन्मुख आ जायेगा। प्राण और अपान की इस क्रिया को 'मूल-बन्ध' कहते हैं।

नीचे कपाल उपर, पग आसमान जोता,
विपरीत नाम मुद्रा, कर्ता न मृत्यु जोता । १६

नीचे सिर और ऊपर पैर कर जो शीर्षासन होता है, उसे 'विपरीत मुद्रा' कहते हैं। उसको करनेवाला मृत्यु से परे हो जाता है।

आहार सूक्ष्म लघु जे, ते यम बने अहिंसा,
नियमो कहुँ बतावूं, जो त्याग कर्म हिंसा । २०

अभ्यास करने के लिये, नीचे लिखे दस यमों में से 'सूक्ष्म और लघु आहार' खाने का यम और दस नियमों में से 'अहिंसा' का पालन करना विशेष रूप से आवश्यक है, नहीं तो अभ्यास ठीक नहीं होगा।

आसन प्रधान चारे, जो नाम सांभळीने,
ते पद्म, सिद्ध, भद्रो, ने सिंह ले कळोने । २१

अब चार प्रकार के प्रधान 'आसन' कहते हैं।

उनके नाम ध्यान में रखो–१ पद्मासन, २ सिद्धासन, ३ भद्रासन और ४ सिंह आसन।

जे योग साधको ने, छे विघ्न रूप दोष,
ते सांभळो कहूँ हूँ, त्यागे स्वचित्त कोष। २२

अब हठ-योग के साधक को विघ्न करनेवाले दोष क्या हैं, उन्हें सुनो और उन दोषों को चित्त में से निकाल दो।

आलस्य धूर्त वातो, तन्त्रादि साधनो जे,
भूतादि प्रेत विद्या, स्त्री लौल्य बन्धनो जे। २३

आलस्य, धूर्त्तता, तन्त्रादि-साधन (मारण, मोहन आदि), भूत-प्रेत-विद्या, स्त्री में आसक्ति–ये सब दोष! बन्धन में डालते हैं। इनका त्याग कर दो।

सुन्दर जमीन गोतो, जेमा न द्वार मोटा,
मत्कुण मशक सतावे, ना कीट जन्तु खोटा। २४

योग करने के लिये पहले सुन्दर स्थान ढूँढ़ो। उसमें बहुत बड़े खिड़की-दरवाजे नहीं होने चाहिये, अपितु उसे गुफा की तरह होना चाहिये। उस स्थान में शरीर को सताने वाले मच्छर, मक्खी आदि जीव-जन्तु नहीं होने चाहिये।

धूपादि गुग्गुलोथी, कर स्थान ने सुवासित,
ऊंचु नहीं न नीचु, ते स्थान स्वच्छ वासित। २५

ऐसे स्थान को पहले गूगल आदि धूप से सुवासित करे। फिर समतल भूमि के ऊपर—

त्यां पाथरो निजासन, कुश चर्म, चैल आवृत,
बेसो जई धरीने, पद्मासने दृढ वृत। २६

कुशासन बिछाकर उस पर मृग-चर्म रक्खे। उसके ऊपर रेशमी आसन बिछाकर पद्मासन लगाकर दृढ़ व्रत से बैठे।

अंगुष्ठ हाथ जमणे, अवरोधि पिङ्गलाने,
पूरो पवन ईडा मां, षोडश धरो कलाने। २७

दत्र दाहिने हाथ से पिंगला नाड़ी को रोककर १६ मात्रा गिनते-गिनते इडा-द्वारा श्वास अन्दर ले जाय।

कुम्भक करो गणीने, मात्राङ्क साठ चार,
रेचक बतीस जारी, कर पिङ्गला विचार। २८

६४ मात्रा तक प्राण को अन्दर रोके रहे और ३२ मात्रा पूरी करते-करते प्राण को बाहर निकाल दे।

शिर हाथ फेरवी ने, जे छोटिका वगाडो,
मात्रा गणाय एक, तेवी दरेक पाडो। २९

सिर के चारों तरफ घुमाकर चुटकी बजाना—इसे एक मात्रा कहते हैं। इस प्रकार १६, ६४ और ३२ मात्रा का एक प्राणायाम करने में पौने-चार मिनट लगते हैं। यह आरम्भ में नहीं सधता है। इसलिये इसके आधे समय का प्राणायाम कर सकते हैं।

प्रातः बपोर सायं, ने मध्य रात्रि वेळा,
क्रमथी वधार एंशी, तक जोर चार वेळा। ३०

इस प्रकार प्रातः, दोपहर, सायं और अर्ध-रात्रि के समय धीरे-धीरे बढ़ाकर प्रत्येक समय ८० प्राणायाम करना चाहिए।

अभ्यास मास त्रणनाथी, शुद्ध थाय नाडी,
आ चिह्न बाह्य भासे, जो शुद्ध थाय नाडी। ३१

इस प्रकार तीन मास के अभ्यास से शरीर की सब नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं, जिसके चिह्न हैं—

लघुता शरीर दीपे, जठराग्नि देह कृशता,
मुख तेजमां प्रकाशे, बल बुद्धि भास समता। ३२

शरीर में हल्कापन आता है, शरीर की दीप्ति बढ़ती है, जठराग्नि मन्द हो जाती है, देह दुर्बल हो जाती है, मुख पर तेज आ जाता है, बल और बुद्धि बढ़ती है और सबमें समत्व दीखने लगता है।

खारू न उष्ण खाटु, तीखूं सरूक्ष शाक,
सेवो अनल न पत्नी, ना पंथ चाल थाक। ३३

प्राणायाम के अभ्यासी को नमकीन, गर्म-खट्टा, तेज मिर्च और रूखा शाक नहीं खाना चाहिये। उसे आग के पास नहीं बैठना चाहिये और स्त्री का सङ्ग नहीं करना चाहिये। उसे इतना नहीं चलना चाहिये कि देह थक जाये।

न्हावूं न प्रातः माने, उपवास काय क्लेश,
आ सर्व साधनार्थी, योगी रहे हमेश। ३४

बहुत सबेरे उठकर स्नान नहीं करना चाहिये, व्रत नहीं रखना चाहिये, जिससे शरीर को कष्ट पहुँचे। हठयोग के अभ्यासी को इन सब नियमों का पालन करना आवश्यक है।

गो धूम मुद्ग शाली, घी दूध पथ्य खीर,
जे खाय चालशे ते, आ तेज धार तीर। ३५

गेहूँ, मूँग, घी, दूध, खीर——यही उसे खाना चाहिये। ऐसी खुराक खानेवाला ही तलवार की धार जैसे तेज (कठिन) मार्ग पर चल सकता है।

अणिमादि-सिद्ध सामी, खेचे रमत बतावी,
आसन उठे चढे छे, गति आसमान फावी। ३६

अणिमादि अष्टि-सिद्धियां उसे प्राप्त होती हैं, और साधक को अपनी ओर खींचती हैं। साधक अपने आसन से ऊँचा उठ जाता है।

सामर्थ्य सिद्धि जगने, जो ते बतावशे तो,
चडतां पड़े स्व-सिद्धि, खाशे फटावशे तो। ३७

इस समय जो साधक अपनी सामर्थ्य दिखाता है या सिद्धि का उपयोग करता है, वह गिर जाता है और उसकी सिद्धियाँ उसी को खा जाती हैं।

आ योग विघ्न छे जो, सामर्थ्य ते बतावे,
गूंगा बधिर समो था, तो विश्व न सतावे। ३८

सिद्धि की सामर्थ्य दिखाना योग में विघ्न-रूप है। उससे व्यक्ति बच नहीं सकता, इसलिये गूँगे, बहरे जैसा बनकर रहने की जरूरत है। इससे विश्व उसे नहीं सतायेगा।

जो लोकने तमासो, तूं दाखवी ठगे तो,
ना योग थाय पूरो, माया नडे ठगे तो। ३९

यदि तू दुनियां को अपना तमाशा दिखाकर, ठगने का प्रयत्न करेगा तो योग पूरा नहीं होगा और माया उसमें बाधा डालकर तुझे ठगेगी।

वायु गये सुषुम्ना, पञ्चादि तत्व चेती,
पादादि जानु क्रमनी, कर भूत-शुद्धि चेती। ४०

जब अभ्यास करते-करते सुषुम्ना नाड़ी चलने लगे, तब तत्त्व में तत्त्व को लय करने के लिये पादादि जानु के क्रम से भूत-शुद्धि करनी चाहिये।

भूत-शुद्धि—चित्त के एकाग्र होने के बाद उसको तत्त्व-विकार से रहित करना या 'तत्वं तत्वे नियोजयेत्' के लक्ष्य से मन को आकर्षण करनेवाले तत्त्वों का उत्तरोत्तर लय करना अर्थात् प्रथम भू-तत्त्व के जल-तत्त्व में लय होने का ध्यान करना। फिर जल-तत्त्व के अग्नि-तत्त्व में, अग्नि के वायु में और वायु के अवकाश (शून्य) में लय होते हुये भाव का ध्यान करना। फिर इस शून्य स्थान में आत्मा को व्याप्त करके फैलाना, इस क्रिया का नाम 'समाधि' है।

समाधि का लक्ष्य प्राप्त होने के बाद अर्थात् हृदयावकाश के आत्मा-मय हो जाने के बाद आत्मा का विस्मरण नहीं होता अर्थात् मन आत्मा-मय बन जाता है।

बहुत जाग्रत् अवस्था में भी अर्थात् विश्व के बाह्य स्थूल कार्य करने पर भी वह स्मरण और आत्मानन्द नहीं मिटता। अस्तित्व की इस प्रकार की स्थिति को 'ईश्वरत्व' कहते हैं।

उसी पद को पहुँचे हुये महा-व्यक्तियों (जैसे भगवान् कृष्ण)

का जन्म इस भू में किसी समय अपने बहुत कार्य के लिये होता है। उसको विश्व अवतार-रूप से मानता है।

ते पांच धारणामां, तत्वो वितत्व थातां,
ते ध्यान पन्थ सीडी, सर कर समाधि जातां। ४१

ऐसी पञ्चेन्द्रियों की धारणा में, सर्व तत्त्वों को लय करने के लिए, उस ध्यान रूपी सीढ़ी के मार्ग को समाधिस्थ स्थिति में प्रविष्ट होने के पहले पार कर।

थाये प्रस्वेद तेथी, मर्दन करो स्वगर्दन,
तो तेज वृद्धि थाये, छे स्वेद सार मर्दन। ४२

प्राणायाम करने से जो पसीना आता है, उसे गर्दन पर मलकर सुखा देना। इससे शरीर का तेज बढ़ता है, क्योंकि वह पसीना कोई चर्बी का विकार नहीं है, अपितु अन्तर में से निकला हुआ सत्त है।

वायु यथेष्ठ धारी, जो शक्ति थाय सारी,
केवल ते कुम्भकी छे, ना रेच पूर जारी। ४३

कुछ अधिक शक्ति प्राप्त होने के बाद पूरक तथा रेचक करने की आवश्यकता नहीं रहती। जब चाहें तब प्राण रोक सकते हैं। इस स्थिति को 'केवल कुम्भक' कहते हैं।

केवल मां दिल अलोटे, चित्त वृत्तिनी निवृत्ति,
ते धारणा धरीने ध्याने रमे प्रवृत्ति । ४४

ऐसी रीति से 'केवल कुम्भक' होने पर मन उसमें रम जाता है। चित्त-वृत्ति की निवृत्ति होती है। उस निवृत्ति को पाए हुए मन को ध्यान में लगाने से उसकी प्रवृत्ति ध्यान में ही लगी रहेगी।

लय थाय आत्म-ज्योति, आनन्द नी समाधी,
जो योग भोग बाणे जागी जमे समाधी । ४५

तब मन आत्म-ज्योति में लय होता है और ईश्वर के बराबर आनन्द की समाधि प्राप्त करता है। उस योग में सब भोग जल जाते हैं।

त्यां ब्रह्म जीवना जे, भेदी बधा मटे तो,
जो एक तत्व जागी, आनन्द तत्व जोतो । ४६

वहाँ जीव और ब्रह्म के सब भेद मिट जाते हैं और एकमात्र आनन्द ही बाकी रह जाता है।

वज्रोली आमरोली, सहजोली नी क्रिया जे,
तेनोज मर्म भाखूं, सुण शब्द मां क्रिया जे। ४७

इस प्रकार के योग के लिए तीन प्रकार कीदूसरी क्रियाएँ भी हैं। उनके नाम—१ वज्रोली, २ आम्रोली, ३ सहजोली हैं। अब इनका रहस्य कहता हूँ, सुनो—

अमरीकषाय पीतां, नित साथ आ क्रियाने,

वज्रोली नाम तेनु, अच्युत थइ जमाने । ४८

वज्रोली क्रिया करने के समय गुरुचि, आँवला और गोखरू का काढ़ा पीना या अकेले आँवले का काढ़ा पीना। इस क्रिया के करने से साधक अच्युतत्व को प्राप्त करता है।

वज्रोली —यह क्रिया हठ-योग की एक उप-क्रिया है, जिसका उपयोग योगी लोग ब्रह्मचर्य के भाव को सँभालने के लिए करते हैं। कुम्भकादि योग के मुख्याभ्यास से इसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह क्रिया, साधक के अघटित मार्ग में चले जाने की सम्भावना होने से और कई साधकों के इसी साधना से उलटे मार्ग में चले जाने से, यहाँ विस्तार-पूर्वक नहीं लिखी गई! इसका अभ्यास कठिन और (गलत होने से) रोग-कर है। इसलिए गुरु के सम्मुखत्व बिना इसे करना ठीक नहीं है। आत्म-साधनार्थ यह क्रिया इतनी उपयुक्त भी नहीं है।

रज-रज्ज विश्व भोगे, पण भोग ना सतावे,

मन जो न क्यां फसे तो, चित्त मस्त योग दावे । ४९

इस क्रिया से साधक को विश्व मे भोग भोगते हुए भी, भोग सताता नहीं है और यदि मन किसी जगह फँस न जाये, तो मन योग में ही मस्त रहता है।

त्रण लोक वेद त्रण छे, त्रण सन्धिने स्वरो त्रण,
त्रण अग्नि आ गुणो त्रण, जो विश्व नी क्रिया त्रण । ५०

तीन लोक हैं—१ भूः, २ भुवः और ३ स्वः अर्थात् भू-लोक, भुव-लोक और स्वर्ग-लोक । तीन वेद हैं—१ ऋग्वेद, २ सामवेद और ३ यजुर्वेद । तीन संधियाँ हैं—१ प्रातः, २ मध्याह्न और ३ सायं । तीन स्वर हैं—१ इडा, २ पिंगला और ३ सुषुम्णा । तीन अग्नि हैं—१ आहवनीय, २ गार्हपत्य और ३ वृकाग्नि । तीन गुण हैं—१ रज, २ सत और ३ तम तथा इस विश्व की तीन क्रियायें हैं—१ उत्पत्ति, २ स्थिति और ३ लय ।

त्रण अक्षरी गुणोने, मन राज-योग राखी,
ध्याने अडिग्ग दिल थी, ते सत्व दाख चाखी । ५१

'ॐ' कार मन्त्र 'अ', 'उ' और 'म'—इन तीन अक्षरों का बना हुआ है । उसमें रज-सत-तम ये तीनों गुण हैं और उत्पत्ति-स्थिति-लय ये तीनों क्रियायें हैं । इस प्रकार के 'ॐ' मन्त्र का, अपना मन राज-योग में रखते हुए, निश्चयात्मक मन से ध्यान करनेवाला सद्-गुण-रूपी अंगूर को चखता है ।

हृत पद्म छे अधोमुख, ने ऊर्ध्व नाल वाळू,
नीचे प्रकाश बिन्दू, मन त्यां फरेब वाळू । ५२

हृदय-कमल का मुँह नीचे है और नाल ऊपर। इसलिए उसका सारा प्रकाश नीचे पड़ता है। उसके काश-विन्दु में जाल से भरा हुआ मन रहता है।

मात्रार्ध बिन्दु सामा, लय थाय नाद रूपे,
एकत्व भासता त्यां, मोती मराल रूपे। ५३

अर्ध-मात्रा नाद बनकर प्रकाश-विन्दु में लय होती है और उस स्थान पर एकत्व का भान होता है। वही अपना अस्तित्व तेज-रूप में दिखाई पड़ता है।
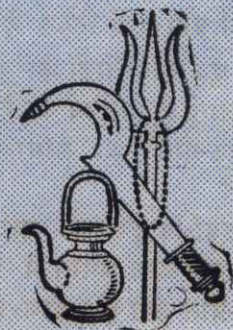
हठ-योग
का
आध्यात्मिक अर्थ

योग-शिखोपनिषद् में 'हठ-योग' का शब्दार्थ इस प्रकार बताया गया है—

हकारेण तु सूर्यः स्यात्, ठकारेणेन्दुरुच्यते ।
सूर्य-चन्द्रमसोरैक्यं, 'हठ' इत्यभिधीयते ।।

अर्थात् 'ह' और 'ठ' अक्षर क्रमशः सूर्य एवं चन्द्रमा के द्योतक हैं तथा 'हठ-योग' को सूर्य और चन्द्र का अथवा इड़ा एवं पिङ्गला का ऐक्य कहा गया है, जो नासा-रन्ध्र में बाएँ-दाएँ स्थित हैं।

सूर्य-नाड़ी एवं चन्द्र-नाड़ी को ही प्राण - अपान की भी संज्ञा दी जाती है, तात्पर्य यह है कि प्राण-अपान की एकता ही 'हठ-योग' का सामान्य शाब्दिक अर्थ समझना चाहिए।

शरीरस्थ इड़ा-पिङ्गला दो नाड़ियों की गत्यात्मक एकता के द्वारा प्राण अपान में एवं अपान प्राण में परस्पर ओत-प्रोत होते हैं। प्राण-अपान के परस्पर

सामञ्जस्य की उचित-अनुचित स्थिति पर ही जीवन निर्भर करता है।

प्राण-अपान की एकता अथवा इडा-पिङ्गला के प्रवाह की एकता से उपलब्ध ऊर्जा को 'सुषुम्णा' में प्रवाहित कर देना या केन्द्रित करना 'हठ-योग' का आध्यात्मिक अर्थ है। इससे अस्तित्व के समस्त मल धुल जाते हैं और ज्ञान का प्रकाश होता है।

हठ-योग के प्रमुख अङ्ग

'हठ-योग' की सरल साधना के लिए छः प्रमुख अङ्ग हैं—१ दृढ़ आसन, २ प्राणायाम, ३ युक्त भोजन, ४ ध्यान, ५ धारणा, ६ सविकल्प समाधि। इन छह अङ्गों के साथ ७ यम और ८ नियम मिलकर 'हठ-योग' के आठ अङ्ग हैं।

उपर्युक्त आठ अङ्गों के अतिरिक्त 'हठ-योग' के मार्ग में तीन मुद्राओं, तीन बन्धों का उल्लेख है—१ महा-बन्ध, २ महा-वेध और ३ खेचरी—ये तीन मुद्रायें होते हैं।

१ जालन्धर बन्ध, २ उड्डियान बन्ध तथा ३ मूल-बन्ध ये तीन बन्ध हैं।

जालन्धर-बन्ध, उड्डियान-बन्ध और मूल-बन्ध का विवरण इस प्रकार है :—

(१) जालन्धर-बन्ध :—इसमें सर्व-प्रथम कण्ठ (गले) को सिकोड़ा जाता है। फिर ठोड़ी को गले के अधः भाग में इस प्रकार लगाया जाता है कि हृदय-प्रदेश से ठोड़ी का अन्तर मात्र ४ अंगुल रह जाय। वक्ष-स्थल उठा रहता है।

कण्ठ-प्रदेश के नाड़ी-जाल-समूह को बाँध कर चित्त को एकाग्र करने के कारण, इसे 'जालन्धर-बन्ध' कहा जाता है। कण्ठ-सङ्कोच द्वारा इड़ा-पिङ्गला नाड़ियाँ अवरुद्ध हो जाती हैं और श्रद्धा - अभ्यास से प्राण-वायु सुषुम्णा में प्रविष्ट हो जाता है।

(२) उड्डियान-बन्ध :—इसमें सर्व-प्रथम पैरों के दोनों घुटनों को मोड़कर; गुदा को संकुचित करते हुये, एड़ी को मेरु-दण्ड के निम्न-शीर्ष से इस प्रकार लगाया जाता है कि उदर में एक गड्ढा बन जाय।

इससे वासना-पूर्ण चित्त को वहन करनेवाला प्राण ऊर्ध्व गति-शील होकर सुषुम्णा नाड़ी में प्रविष्ट हो जाता है।

(३) मूल-बन्ध :—इसमें सर्व-प्रथम बाँयें पैर की एड़ी को गुदा और लिङ्ग के सन्धि-भाग में दृढ़ता से लगाया जाता है। फिर दाहिने पैर की एड़ी को लिङ्ग के ऊपरी भाग में रक्खा जाता है। गुदा को अन्दर की ओर संकुचित करते हुए, गुदा और लिङ्ग के सम्पूर्ण मध्य-भाग को संकुचित किया जाता है।

इससे अधोगामी प्राण (अपान) शनैः-शनैः ऊपर की ओर खिचता है और ऊर्ध्व-गामी प्राण (प्राण) के साथ उसकी एकता होती है। प्राण-अपान की एकता से कुण्डलिनी सीधी होकर ऊपर की ओर चढ़ती है अर्थात् जाग्रत् हो जाती है।

उपर्युक्त तीनों बन्धों के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत् होती है। अनेक जन्मो से सञ्चित सुख-दुःख-प्रद कर्म - संस्कार व वासनायें नष्ट हो जाती हैं। अस्तित्व को स्वयं प्रकाशमान आत्मा का बोध हो जाता है।

खेचरी-मुद्रा का स्वरूप

'हठ-योग-प्रदीपिका' में खेचरी-मुद्रा के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है—

कपाल-कुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥

अर्थात् तालु के मध्य में छिद्र या गड्ढा है, जिसे योगी अमृत-कूप, कपाल-कुहर, कपाल-विवर, दशम-द्वार, भ्रुकुटी-गुहा, व्योम-चक्र या ब्रह्म-रन्ध्र कहते हैं। उसमें जब जिह्वा उलट कर प्रवेश करती है और दृष्टि भ्रू-मध्य में स्थिर हो जाती है, तब 'खेचरी-मुद्रा' बनती है।

तीनों बन्ध एवं मुद्रायें अत्यन्त सरल हैं। इसके लिए केवल नित्य अभ्यास की आवश्यकता है। खेचरी-मुद्रा के विषय में जन-साधारण में अनेक भ्रान्त धारणायें प्रचलित हैं, इस प्रकार की धारणाओं से घबराना नहीं चाहिये। खेचरी मुद्रा में जिह्वा के नीचे के जोड़ को, बाँस की धार से इतनी नम्रता से काटा जाता है कि उससे रक्त नहीं निकलता और न ही कष्ट होता है। इसके लिए अनुभवी गुरु का सान्निध्य आवश्यक है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में २ से ३ वर्ष लग जाते हैं और इसका प्रारम्भ २५ वर्ष की आयु के पूर्व ही किया जाना चाहिये।

इस प्रकार खेचरी-मुद्रा में जिह्वा की वृद्धि की जाती है, जिससे जिह्वा को ऊपर की ओर उल्टी करके कपाल के मध्य वाले छिद्र में प्रविष्ट किया जा सके और तब भौंहों के मध्य में दृष्टि को मन से संयुक्त करके चित्ताकाश का लय चिदाकाश में किया जाता है। इसके द्वारा समाधि की त्वरित उपलब्धि सम्पादित होने लगती है, परन्तु बिना अनुभवी गुरु के इसे नहीं किया जा सकता क्योंकि अनुभवी गुरु की अनुपस्थिति में इसमें असावधानी सम्भव है।

यदि कोई इसे नहीं करना चाहता, तो उसका विकल्प भी है। ज्ञान-सङ्कलिनी तन्त्र में लिखा है—

मनः स्थिरं यस्य विनावलम्बनम्।
वायुः स्थिरो यस्य विना निरोधनम्॥
दृष्टिः स्थिरा यस्य विनावलोकनम्।
सा एव मुद्रा विचरन्ती खेचरी॥

अर्थात् जो बिना किसी भौतिक पदार्थ का आधार लिये अपने मन को एकाग्र कर सकता है; जो प्राणायाम के द्वारा अपने श्वास-प्रश्वास को विशेष शारीरिक

प्रयास के बिना ही नियमित कर सकता है; जो अपनी दृष्टि देखे बिना नियमित कर सकता है, तो यह समझ लेना चाहिये कि उसने 'खेचरी-मुद्रा' की विद्या प्राप्त कर ली है। 'खेचरी-मुद्रा' के इस सरल विधान में जिह्वा को काटने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। केवल इसे पीछे मोड़ कर ऊपरी तालू को स्पर्श करते हुए, ध्यान का अभ्यास करना होता है।

आसन

साधारणतः हम लोग 'आसन' का अर्थ शारीरिक व्यायाम समझते हैं। वास्तव में 'आसन' का अर्थ है— शरीर की सामञ्जस्य-पूर्ण स्थिति। आसनों का प्रभाव केवल शरीर तक सीमित नहीं रहता। शरीर, मन और चित्त तीनों पर 'आसन' का प्रभाव पड़ता है।

'आसन' का लक्ष्य साधक को परम चेतना के मार्ग पर ले जाना है, जिससे साधक को स्व - अस्तित्व का वास्तविक ज्ञान हो सके। इसीलिये आसन 'योग' का पहला अङ्ग है।

'आसन' करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है—

१ आसन दृढता - पूर्वक पूर्ण मनोयोग के साथ लगाना चाहिए।

२ आसन का अभ्यास करते समय ध्यान इधर-उधर नहीं रखना चाहिए।

३ आसन का अभ्यास सुन्दर, स्वच्छ स्थान में नियमित रूप से निश्चित समय व निश्चित काल के लिये करना चाहिये।

आसन के चार मुख्य प्रकार हैं–१ पद्मासन, २ सिद्धासन, ३ भद्रासन और ४ सिंहासन। इनमें पद्मासन सभी के लिए उपयोगी है।

पद्मासन में सर्व-प्रथम दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठे। फिर धीरे-धीरे दाहिने पैर को मोड़ कर बाँयी जांघ पर रक्खे। इसके बाद बाँयें पैर को धीरे-धीरे मोड़ कर दाहिनी जांघ पर रखना चाहिए। दोनों घुटने भूमि से सटे रहने चाहिए व आँखें बन्द कर लेनी चाहिये।

प्राणायाम

प्रश्नोपनिषद् (प्र० १/४) में सृष्टि - उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राण का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"स मैथुनमुत्पादयते–रयिं च प्राणं च ।"

अर्थात् सृष्टि-उत्पादन हेतु प्रजापति ने सर्व-प्रथम 'रयि' और 'प्राण' का एक जोड़ा उत्पन्न किया।

आकाश से उत्पन्न वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, वनस्पति तथा इनके परिमाण से लेकर सौर-मण्डल के नक्षत्र आदि 'रयि' कहलाते हैं।

वह शक्ति, जिसके द्वारा आकाश से उद्भूत ब्रह्माण्ड के उक्त सभी पदार्थों में गति-कम्पन हो रहा है, 'प्राण' कही गई है। दूसरे शब्दों में, 'प्राण' जीवन-शक्ति है और 'रयि' प्राण-शक्ति से क्रिया-शील सम्पूर्ण मूर्त तथा अमूर्त पदार्थ है।

प्राण "प्र+अन्+अच्" शब्द का अर्थ है–प्रकृष्ट रूप से चलनेवाला। अर्थात् आप से आप चलनेवाला। शास्त्रों में इसके दो प्रधान भेद बताए गए हैं–१ पर-प्राण और २ अपर - प्राण। पर-प्राण आवरण-रहित है और अपर-प्राण आवरण-सहित है। इन दोनों को क्रमशः 'शिव' और 'जीव' कहते हैं।

प्राण 'कुर्वद्रूप' अर्थात् क्रियात्मक रूप है। इसकी क्रियाओं के आधार पर इसके भिन्न-भिन्न नाम हैं। वेदों में इसे सत्य, अमृत, तेज कहा गया है।

जीव-रूपी अपर-प्राण मुख्य रूप से पञ्च-क्रियात्मक है, जिन्हें क्रमशः १ प्राण, २ अपान, ३ समान, ४ व्यान और ५ उदान कहते हैं।

'प्राण' जब जीव-शरीर को श्वास से पूर्ण करता है, तब राग - स्वरूप 'प्राण' कहलाता है और जब द्वेष से अवांछनीय पदार्थों को निःश्वास - रूप से बाहर फेंक देता है, तब 'अपान' कहलाता है।

इसी प्रकार जब भीतर लिये गये पदार्थों को अपने में मिला लेता है, तब वह 'समान' कहलाता है। समान रूप से ग्रहण किये गये पदार्थों के युक्त वितरण-वाले रूप में 'व्यान' कहलाता है। वाक्-शक्ति को ठोस रूप देने से वह 'उदान' कहलाता है।

इन पाँच रूपों के अतिरिक्त जीव - रूपी अपर-प्राण के पाँच और रूप हैं, जिन्हें क्रमशः ६ नाग, ७ कूर्म, ८ कृकर, ९ देवदत्त और १० धनञ्जय कहते हैं। इनके अतिरिक्त ३९ रूप और हैं। इस प्रकार जीव-शरीर में प्राण के कुल ४९ क्रियात्मक रूप हैं।

प्राण के क्रियात्मक होने से, चित्त भी क्रियात्मक होता है। प्राण के निश्चल होने पर, चित्त भी निश्चल

हो जाता है। प्राण के संयम द्वारा योगी चित्त की एकाग्रता को प्राप्त कर सकता है। हठ-योग-प्रदीपिका में कहा गया है—

> चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
> योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥

ध्यान

आसनों की भाँति 'ध्यान' के विषय में भी व्यक्तियों में त्रुटि-पूर्ण भावनायें प्रचलित हैं। एक स्थान पर आँखें वन्द कर बैठ जाना ध्यान नहीं कहलाता।

अन्तर्ज्ञान की प्राप्ति के लिए, चित्त को बाह्य विषयों से हटाकर आत्मा-रूपी सूर्य की ओर ले जाना ही ध्यान है। चेतना की जागृति के लिए, बाह्य वातावरण को भूलकर ध्यान द्वारा अन्तः-यात्रा करनी पड़ती है। इसीलिए प्राणायाम के बाद ध्यान का योग के प्रमुख अङ्ग के रूप में उल्लेख हुआ है।

ध्यान के दो मुख्य प्रकार हैं—१ क्रियात्मक और २ विचारात्मक। हठ-योग में ध्यान क्रियात्मक है, राज-योग में ध्यान विचारात्मक है।

ध्यान की दो मुख्य विधियाँ हैं—१ निर्विकल्प-विधि, २ सविकल्प विधि। सविकल्प विधि में व्यक्ति निरन्तर कार्य-रत रह सकता है। हठ-योग व राज-योग में ध्यान की सविकल्प विधि है।

धारणा

योग-साधना के लिए मानसिक धारणा का होना बहुत आवश्यक है। बिना इसके योग-साधना के सभी अङ्ग पंगु मात्र रह जाते हैं। धारणा द्वारा योग के सभी अङ्ग पुष्ट होते हैं। इसीलिए ध्यान के बाद धारणा को योग का प्रमुख अङ्ग बताया गया है।

यम-नियम

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति के लिये श्रद्धा के साथ जितेन्द्रिय होना भी आवश्यक है।

जैसे वर्तन की तली में छिद्र होने पर, वर्तन में पानी नहीं ठहर पाता, उसी तरह जिस मनुष्य के वश में मन और इन्द्रियाँ नहीं हैं, उसके हृदय में ज्ञान नहीं ठहर सकता। इन्द्रिय-लोलुपता आत्म-स्वरूप के ज्ञान से दूर हटा कर देहाध्यास को दृढ़ करती है।

इसीलिये योग-साधना में यम और नियम को आवश्यक बताया गया है।

सविकल्प समाधि का परिचय

'समाधि' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है—१ 'सम' और २ 'अधि'।

भगवान् कृष्ण के अनुसार 'गुणों को समता में ले आना और व्यवहार में 'स्थिर-प्रज्ञ' अवस्था की प्राप्ति ही 'समाधि' है।

प्रकृति के तीन गुण हैं—१ सत्, २ रज और ३ तम। ये ब्रह्माण्ड में रहकर कार्य करते हैं और पिण्डाण्ड में भी इन्हीं का व्यापार चल रहा है। इनकी विषमता में मनुष्य को क्रोध, अशान्ति और दुःख का प्राप्ति होती है। इनकी साम्यावस्था में मनुष्य को वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होती है, जिसकी पराकाष्ठा 'समाधि' कहलाती है।

'समाधि' के दो प्रधान भेद हैं–१ 'सविकल्प समाधि' और २ 'निर्विकल्प समाधि'। 'सविकल्प समाधि' में मन का अस्तित्व बना रहता है। 'निर्विकल्प समाधि' में उसका लय हो जाता है।